International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 71-74

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 71-74
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-09-2016
Accepted: 18-10-2016

Kiran Yadav
Ph.D. Scholar, JS University, Shikohabad Uttar Pradesh, India

Correspondence
Kiran Yadav
Ph.D. Scholar, JS University, Shikohabad Uttar Pradesh, India

वेदों में योग का प्रमुख स्थान–एक अध्यनन

Kiran Yadav

वैदिक संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम ग्रन्थ वेद माने गये हैं। भारतीय संस्कृति में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। वेद शब्द विद धातु में घञ प्रत्यय जोड़कर सम्पन्न हुआ, जिसका शाब्दिक अर्थ है ''ज्ञान के ग्रन्थ''– है – इसी धातु में विदित (जाना हुआ), विद्या (ज्ञान), विद्वान (ज्ञानी) जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। वैद्विक साहित्य में र्स्वस्वरूप (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) को वेदत्रयी के नाम से भी सर्वविदित है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की हैः

''विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विद्वित
विचारयति सर्वे मनुष्याः सत्य विद्यां यै
येवु व तथा विद्वासश्च भवन्ति ते वेदा''

अर्थात् वेद ज्ञान प्राप्ति के वे साधन जिनके माध्यम से समस्त सत्य विधाएं जानी या प्राप्त की जाती है।
सायण आचार्य के अनुसार – वेद इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार एवं अलौकिक उपाय को बताने वाले हैं।

इष्टप्रायनिष्ट परिहारयोरलौकिकमुपायं यो–ग्रन्थों वेदयति स वेद।

वेद ज्ञान के वे अक्षय कोश है जिनमें सभी विषयों का समावेश है मनुस्मृति में कहा गया है–

''वेदोऽखिलो धर्ममुलम''

अर्थात् वेद समस्त धर्मों के मुल है, वेद परमात्मा के निःश्वास स्वरूप है।

''यस्य निश्वासित वेदा''

वेदों में केवल यज्ञमय, स्तुतिमय अथवा यज्ञार्थक होने के साथ–साथ उनके अन्तरम में योग रूपी बीज भी दृष्टिगोचर होते हैं। विज्ञान भिक्षु ने स्वीकार किया है कि सभी वेदों के अर्थ का सार व्यास के भाष्य में उल्लिखित है।

''सर्व वेदार्थ सरोऽत्र वेद त्यासेन भाष्तिः
योग भष्य भिषेणातो मुमुक्षणमिदगर्त।।

व्यास भाष ने योग विद्या को ही महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। योग का मुख्य आधार ग्रन्थ वेदों को ही सार्वभौमिक दी जाती है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं किया जा सकता है। तथापि (यद्यपि) वेदों में नियम पूर्वक योग का वर्णन तो प्राप्त नहीं होता है परन्तु बीज के रूप में यत्र–तत्र सर्वत्र योग रूप अंकुरण अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं। वेदों में अनेक ऐसे मन्त्र पाये जाते हैं जो योग का सविस्तार वर्णन करते हैं।
भगवान शिव के बाद वैदिक ऋषि मुनियों से ही योग का शुभारम्भ माना जाता है। तत्पश्चात् महावीर स्वामी, महात्मा बुद्धि, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरूषों ने यथा सम्भव विस्तृत रूप प्रदान किया है। महर्षि पातन्जलि ने इसे सुत्यव–स्थित रूप प्रदान किया।

योग का शब्दिक अर्थ है – जोड़ना अर्थात वृद्धि करना या संगठित करना है। योग के अभाव में किसी कार्य की सिद्धि सम्भव नहीं है।

''यस्माद्धते न सिध्यति यज्ञा विपश्चितश्चन स धीना योगमिन्वति''।।

ऋग्वेद (1/18/7//

अर्थात् योग कर्म के बिना विद्ववत जनों को कोई भी यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता है। योग क्या है? यह चित्त वृत्तियों का निरोध रूप है। वह कतर्व्य स्वयं के कर्म मात्र में व्याप्त है। इससे हमें ज्ञान होता है कि योग बाह्य वृत्तियों न होकर आन्तरिक वृत्तियों का नाम योग है। अर्थात् मन की एकाग्रता का नाम योग है।

''सधा नो योग आभुवत् स राये स
पुरं ध्याम्।
गमद् बाजे भिरा स नः।।''

(1/5/3//

पूज्य परम्पिता परमात्मा हमारी समाधि के निमित्त अभिमुख हो। उनकी कृपा से हमें विवेक ज्ञान तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त है। विविध प्राकार की ऋद्धि सिद्वियों से पूर्ण होकर हमें दर्शन देकर कृतार्थ करें। क्यों कि मन चंचल और अस्थिर है, इसे वश में करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा वश में किया जा सकता है।

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परक्षर
परोनित्तर्तत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतोमनः।।
(ऋ010/16421) अथर्ववेद (02/96/26

मन संसार की सर्वोत्तम ज्योति है, मन के जाग्रत अवस्था में ही नहीं अपितु स्वपनावस्था में भी चलायमान रहता है, अतः मन को शान्त करने के लिए योग रूपी साधना में लीन होना ही सवोत्कृष्ट है।
श्रुतियों के अनुसार प्रमुखतः चार अन्तकरण स्वीकार किये हैंः

मनश्चमनतव्यं च वुद्धिश्च बौद्धत्यंचाहकार
श्चाहङ्कर्तत्यं च चित्त च चेतपितत्य च''
प्रश्नोपनिषद् (1/4/11

उपरोक्त श्लोक में विदित है कि मनन करने वाला मन, निश्चय करने वाली बुद्धि, अभिमान करने वाला अहंकार और चिन्तन करने वाला चित्त, ये चार प्रकार के अन्तःकरण होते हैं। इन चारों अन्तःकारणों को योग रूपी साधना के माध्यम से ही इन पर विजय श्री को प्राप्त किया जा सकता है।

यज्जाग्ततो इरमुदैतिदैवं तदु सुप्तस्य तथैषेति
इरगम ज्योतिषां ज्योतिरेक तन्येमनः शिव संकल्प मस्तु।
यजुर्वेद अध्याय (34/1/1

मन के प्रायः दो गुण–
मन जागृत तथा सुप्तावस्था दोनों अवस्थाओं में दूरगामी है।
मन ज्योतियों का भी ज्योति कहा गया है इसका उल्लेख उपरोक्त श्लोक में किया गया है।
प्रमुखतः मन की कोई सीमा नहीं होती है। मन पल भर में ही सम्पूर्ण विश्व का परिभ्रमण कर सकता है। यह जाग्रतावस्था में भी मन तन भ्रमण करता है और सुप्तावसथा में भी। ज्ञात–अज्ञात, दृश्य–अदृश्य, अननभूत–अनुभूत सभी प्रकार के पदार्थ स्वप्न में दृष्टि गोचर होते हैं। इन अवस्थाओं के द्वारा और सुख और दुःख का अनुभव होता है। इसलिए ऋग्वेद में मनीषियों ने कहा हैः

योगे योगे तवस्तंर वाजे वाजे हवामहे
स्खय इन्द्रभूतये।।
1/33/711 ऋग्वेद

अर्थात् योग की क्रियाओं से प्रत्येक पुरूष के व्यक्तित्व विकास बौद्धिक विकास और मानसिक विकास के साथ साथ पारिवारिक विकास, सामाजिक विकास, आध्यात्मिक विकास का शोधन और स्वास्थ्य, संरक्षण तथा रोगोपचार होता है। योग साधन प्रक्रिया में प्रत्येक यज्ञ अर्थात! अभ्यातर योग यज्ञ में प्रभु इन्द्र देव आप ही को आमन्त्रित करते हैं। क्यों कि आप ही सर्वशक्तिशाली और सबके रक्षक है। वेद मन्त्रों का अर्थ प्रमुख रूप से तीन प्रकार से स्पष्ट किया जाता हैः
(i). आध्यात्मिक
(ii). अधियज्ञ
(iii).अधिदैविक

अध्यात्मिकता का अर्थ इस सृष्टि और अतिसृष्टि का वर्णन करना होता है, जो कि योग परक कहा जाता है। ऋर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्र (1.21।:22) में उल्लेख किया है कि ''वो जिनमें दृढ़ निष्ठा होती है वह मनुष्य योग एवं साधना एवं कठोर तप से समाधि के निकट होते हैं अर्थात् व्यक्ति का अभ्यास हल्का, मध्यम या तीव्र हो उसका प्रभाव भी पुरूष पर पड़ता है। ऋर्षिगण संकेत कर रहे हैं कि अध्यात्मिक प्रगति इस बात पर निर्भर नहीं करती है कि हम कितना समय अभ्यास पर दे रहे हैं, परन्तु इस बात पर निर्भर करता है कि हम कितने समर्पण से ऊर्जा एवं प्रयास अपनी योग साधना में डाल रहे हैं।

''समाधि ईश्वर को समर्पण से भी प्राप्त होती है''

योग का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म तथा व्यापक रूप से प्राप्त होता है। ध्यान में उच्च चैतन्य की प्राप्ति करना तथा रीतियों का विकास एवं श्रमनिक परम्पराओं का विकास उपनिषदों की परम्परा के द्वारा विकसित हुआ है। जो कि निम्नवतः हैः

समेशुचौ शर्करा वहिन वालुका
विवर्जिते शब्द जलाश्रयदिभिः
मनोऽनुकुल न तु चक्षुपीड़ने
गुहा निवाता श्रमण प्रयोजयेत।।
श्वेतास्वरोपनिषद् (2/10/

अर्थात् वह स्थान जो सम् है, शुद्ध है, कंकर, अग्नि और बालू आदि से रहित है। शब्द शून्य और जलाशय आदि से शुशोभित मन अनुकूल है नेत्रों को कष्ट (पीड़ा) देने वाला नहीं है। एकान्त एवं निर्वात है, ऐसे स्थान पर योग साधना का अनुष्ठान करे और अपने चित्त को परम्पिता परमात्मा में लगाये।''
चित्त की एकाग्रता सम्यक समाधि है और समाधि के अनेक प्रकार है। समाधि को मुख्यतः लौकिक एवं लोकोत्तर दो भागों में विभाजित किया गया है।

- विशुद्धिमग्नों से लौकिक समाधि को प्राप्त कराने वाले उपाय शमथयान और
- लोकोत्तर समाधि को प्राप्त कराने वाले उपाय को विपश्यनायान कहा जाता है।

लौकिक समाधि एवं लोकोत्तर समाधि को प्राप्त करने के लिए यजुर्वेद के उपासको द्वारा समाधि को अवस्था एवं आकाँक्षा को ईशावास्यनिदं के प्रथम श्लोक के माध्यम से व ज्ञान व आत्म ज्ञान को प्रयुक्त किया है।

ईशावास्यनिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञजीथाःमा ग्रन्थः कस्योस्विद्धनम।।

अर्थात् वह परमेश्वर जो सम्पूर्ण जगत पर प्रशासन करता है वह समस्त जीवों की आत्मा है। सभी जीवों की आत्मा होते हुए प्रत्यागत्मा रूप होने के कारण उसके उसी रूप वाले आत्मा से यह जगत वास्पित् अर्थात आच्छादनीय है। प्रत्यगात्मा होने के कारण ही यह सब हूं, यहां परमार्थ सत्य है और यह चराचर जगत मिथ्या है, वह आत्मा अपने परमात्मा में आच्छादनीय है। जिस प्रकार चन्दन अगरू आदि जल के सम्बन्ध से गीलेपन उत्पन्न होने वाली औपधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। अर्थात् चन्दनाति स्वरूप के घर्षण करने पारमार्थिक गन्ध से आच्छादित हो जाती है। उसी तरह आत्मा भी अध्यस्त स्वाभाकि कर्तव्य भोक्तृत्व आदि रूपी जगत भेदस्वरूप है। अवएव त्यागपूर्वक आत्मा का पालन करो, यही वेदार्थ है।

योगजिनों को योगसिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है यह निश्चित कथन है ऐसा श्रुति में कहा गया है कि–

यदेव विद्यया करोति
श्रद्धयोपनिषदात देववीर्यवत्तंर भवतीति।

अर्थात् जो मनुष्य विद्या, श्रृद्धा और योग से युक्त होकर जिस कर्म को वह साधना रूपी अभ्यास से करता है, उसकी वही साधन रूप अभ्यास अत्यधिक बलवती हो जाती है और वही सिद्धिप्रद होती है। जैसा कि निम्नवत श्लोक में कहा गया हैः

''तमेव विद्वान न विभाग मत्यो''

अर्थात् वही मनुष्य जो परमात्मा को जानने वाला है आत्मदर्शी योगी मृत्यु से भयभीत नहीं होता है। ऋग्वेद में कहा गया है।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं बाघास्या अहम्
स्युष्टे सत्या इहाशिषः
ऋग्वेद 8/14/23

हे परमपिता परमात्मा यदि मैं तू हो जाऊं और और तू मै हो जाऊं तो इस लोक में तेरा आदेश एवं सहयोग की भावनाएं सत्य सिद्ध हो जाए। योगी जन अपने चरमोत्कर्ष अनुभव को प्राप्त हो जाए।

वेदाहमेतं पुरूषं महान्त
मदित्यवर्ण तमसः परस्तात
तमेव विवित्वाति मृत्युमतिं
नान्यः पन्थाविद्यते ऽयनाया।।
यजुर्वेद अध्याय 3 मन्त्र 18

प्रस्तुत मंत्र में ऋषि स्वयं भाषित करते हैं कि पृथ्वीलोक, घूलोक, तथा अन्तरिक्षलोक से परे स्थित उस परम्पिता परमात्मा को मैं सभी प्रकार से जानता हूं क्योंकि योग समाधि के द्वारा मैंने उसे प्रत्यक्ष रूप से साक्षात् दर्शन किया है। वह विधा रूपी अन्धकार से परे स्वयं ज्योति स्वरूप है। उस चैतन्य रूपी ज्योति का ज्ञान प्राप्त कर तथा उसका साक्षात दर्शन करके ही मनुष्य जनम मरण रूपी संसार में आवागमन के बन्धन से मुक्ति पाकर परमआनन्द को प्राप्त करता है।

ध्यान के विषय में वेदों में कहा गया है–

''आरोह तमरोज्योति''

अर्थात् ध्यान करने से ध्यानी पुरूष को परम ज्योति मिलती है और उसके जीवन में अन्धकार रन्चमात्र नहीं रह जाता है। अर्थवेद में कहा गया है कि–

''पुण्डरीकं नवद्वारंत्रिभिर्गणे भिरावृत्तम
तस्मिन यद यक्ष मात्यन्वत प्रद वै ब्रहम विदोविदुः।।
अथर्ववेद 10/8/4311

त्रिगुणात्म रूपी शरीर में जो आत्मा रूप में यक्ष ब्रम्ह विद्यमान है वह ब्रम्हनिष्ठावान पुरूष ही जो योगनिष्ठ है ध्यान, समाधि के द्वारा सभी प्रकार से जानते हैं, या दर्शन कर पाते हैं वह अन्य नहीं हैं। धारणा की अवस्था में ही चित्तवृत्तियों को लगाया जाता है।

ध्यान दो प्रकार के होते हैंः

(i). मूर्तध्यान
(ii). अमूर्तध्यान

इसी को स्थूल ध्यान या सूक्ष्मध्यान आदि के नाम से भी जानते हैं। जिसका कोई आकार हो, गुण–धर्म विशिष्ट हो उसे सगुण कहते हैं। परन्तु जिसका कोई आकार नहीं हो उसका ध्यान करना निर्गुण ध्यान कहलाता है।

इस प्रकार अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वेदों में योग का महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद के (1/5/3) वे श्लोक में बताया गया है कि योग कर्म के बिना विद्ववत् जनों का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। महर्षि पतंजलि द्वारा लिखित योग दर्शन में बताया गया है कि ''योगश्च चित्तवृत्ति निरोध'' अर्थात् योग चित्त वृत्तियों का निरोध है। महर्षि पतंजलि के अनुसार मनुष्य की चित्तवृत्तियां पांच प्रकार की होती है – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प निंद्रा, स्मृति। इन चित्तवृत्तियों पर अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त किया जा सकता है। वैदिक साहित्य के अनुसार वेदों की संख्या चार है। ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद अर्थववेद। जिनमें से ऋग्वेद अथवा अर्थवेद में मन संसार को सर्वोत्तम ज्योति है क्योंकि मन जाग्रत अथवा स्वप्नावस्था दोनों अवसथाओं में चलायमान होता है। अतः मन को शान्त करने के लिए योग रूपी साधना में लीन होना ही पड़ता है। ऋग्वेद के अनुसार परमात्मा को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। योग अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा उस परम्पिता परमात्मा में लीन होकर अपनी योग साधना को सिद्ध किया जा सकता है। स्वेतास्वरोपनिषद (2/10) के अनुसार योग साधना कब कहां और कैसे किया जा सकता है इसका उल्लेख मिलता है। अर्थववेद (10/2/17) के अनुसार मनुष्य का मस्तिष्क समस्त ज्ञान विज्ञान का भण्डार है। मनुष्य के मस्तिष्क की रक्षा प्राण, मन, तथा अन्न के द्वारा होती है।

तद्वा अर्थवणः शिरोदेवकोशः समुब्जितः
तत् प्राणो रक्षति शिरो अन्नभयो।।
(10/2/27)

अर्थात् प्राण को रोकने के लिए अन्न पर नियंत्रण रखना होता है और अन्न पर नियंत्रण रखने के लिए मन पर नियंत्रण रखना होता है और मन शान्त होने पर वृत्तियां का उठना भी शान्त हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर को अन्न जल तथा प्राण की आवश्यकता होती है उसी प्रकर योग, प्राणायाम और ध्यान की आवश्यकता होती है।

सन्दर्भ सूची

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कपिल देव द्विवेदी
2. पातञ्जलयोगसूत्रतम्, डा0 महाप्रभुलाल गोस्वामी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी
3. अरिहन्त पब्लिकेशन्स पेज नं. 3,195
4. पातञ्जल योगदर्शन – रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्भा प्रकाशन पेज नं. 8
5. पातञ्जल योगदर्शन – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती, योगनिकितन ट्रस्ट ऋषिकेश पेज नं. 7,12
6. सचित्र योग दर्शिका – डा0 इन्द्रमोहन झा 'सच्चन' पेज नं. 18,19
7. पातञ्जल योगदर्शन – स्वामी श्री ब्रम्हालीन मुनि पेज नं. 8–9

8. पातञजल योगदर्शन – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती, योगनिकितन ट्रस्ट ऋषिकेश पेज नं. 29, 152–153
9. सचित्र योगााशन–दर्शिका
10. यजुर्वेद
11. पातंजल योग